कैसे पढ़ाएं भौतिकशास्त्र?

विजय एस. वर्मा

बीसवीं सदी के मध्य तक शिक्षा में, पूरब और पश्चिम दोनों तरफ़, व्यवहारवाद का बोलबाला था। जब मैं स्कूल पूरा कर रहा था, लगभग उसी समय ऐसा कुछ हुआ जिसका असर दुनियाभर में विज्ञान शिक्षा पर हुआ। यह कुछ था 1950 के मध्य दशक में सोवियत संघ द्वारा स्पूतनिक छोड़ा जाना। ज़ाहिर है इस मानव निर्मित वस्तु को पृथ्वी के चक्कर लगाते, बीप-बीप-बीप करते देखना रोमांचक था, मगर इसने किया यह कि जिस ढंग से विज्ञान व टेक्नॉलॉजी पढ़ाए जाते थे उसे लेकर एक असुरक्षा का भाव पैदा किया और एक चुनौती पेश कर दी। इस ज़बर्दस्त प्रगति, जो उपग्रह के प्रक्षेपण के रूप में साकार हुई थी, की वजह से पश्चिमी देशों ने सोवियत संघ से एक ख़तरा महसूस किया। इसके परिणामस्वरूप, और मेरे ख़्याल में, इसके प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में 1960 के दशक में कई सारे स्कूली विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम शुरू हुए जिन्होंने एक मायने में स्कूल में विज्ञान पढ़ाने के तौर-तरीक़ों में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। मैं ख़ास तौर से हार्वर्ड प्रोजेक्ट फिज़िक्स, दी स्कॉटिश स्कूल प्रोग्राम और इंग्लैण्ड में नफील्ड प्रोजेक्ट का ज़िक्र करूंगा। ये कार्यक्रम एक-दूसरे से काफ़ी अलग थे मगर इन सबमें एक साझा बात यह थी कि ज़ोर तथ्यों और आंकड़ों पर महारत हासिल करने की बजाय विषय की संरचना सीखने-सिखाने पर था। ज़ोर विज्ञान के परिणामों की बजाय विज्ञान की प्रक्रिया पर था और एक प्रयास था कि मात्र तोतारटंत की बजाय खोजबीन और प्रयोगों की ओर क़दम बढ़ाए जाएं। कक्षा में प्रवचननुमा विमर्श पर ज़ोर कम किया गया और लोगों को, कम से कम छात्रों को खोज व अन्वेषण की धारणा विकसित करने को प्रेरित किया गया।

हमारे देश में पारंपरिक रूप से, और अक्सर आजकल भी, विज्ञान को मूलतः 'गृहीत ज्ञान' के रूप में सीखा जाता है, तथ्यों के एक ऐसे पुलिंदे के रूप में सीखा जाता है, जिसे लंबे समय में विकसित किया गया है और जिसमें कोई प्रश्न, कम से कम कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न, अनुत्तरित नहीं है। पाठ्यक्रम की प्रकृति, जिस ढंग से उसे कक्षा में पढ़ाया जाता है, और जिस ढंग की परीक्षा प्रणाली है, इन सबका मिला-जुला नतीजा यही होता है। पारंपरिक ढांचे में प्रयोग, खोजबीन या चर्चा की कोई जगह नहीं है क्योंकि इन्हें फ़ालतू की मशक़्क़त माना जाता है, जो कक्षा में पाठ्यक्रम के कार्यक्रम संचालन में बाधा पहुंचाते हैं।

दूसरी ओर, साठ के दशक में विकसित पाठ्यक्रमों में उस चीज़ की झलक थी जिसे निर्माणवादी पैराडाइम कहा जा रहा है, और इस निर्माणवादी नज़रिए के मूल में यह विश्वास था कि व्यक्तियों की अपनी संकल्पनाएं उनकी समझ को निर्देशित करती हैं। इस पैराडाइम के मुताबिक़ बाह्य विश्व का ज्ञान एक मानव निर्मिति है। इसे 'प्रकृति की किताब' से सीधे नहीं पढ़ा जा सकता। हर सीखनेवाले को अवधारणाओं का एक पुंज निर्मित करने का प्रयास करना पड़ता है, जिसके ज़रिए वह बाह्य विश्व को देखता है। ज़ाहिर है एक यथार्थ है चूंकि वह हमें दिखता है, शायद कई परतोंवाला यथार्थ है, प्रकट रूप जिसकी सबसे बाहरी परत है। वैज्ञानिक अपने यंत्रों और प्रयोगों से इस यथार्थ की तहक़ीक़ात करने का प्रयास करते हैं, और फिर यह अनुमान करने का प्रयास करते हैं कि यथार्थ वास्तव में कैसा है। मॉडल निर्माण या सिद्धांत निर्माण के ये प्रयास तब तक आज़माइशी रहते हैं जब तक कि यह न दर्शा दिया जाए कि उनमें पूर्वानुमान की क्षमता है और इसके बाद भी यह संभावना बनी रहती है कि आगे किए जानेवाले प्रयोग वाकई उन्हें ग़लत साबित कर देंगे। किसी मॉडल द्वारा की गई भविष्यवाणी और वास्तविक अवलोकन से उसकी

निकटता किसी भी सिद्धांत के अच्छे होने का पैमाना है। जब सिद्धांत द्वारा किए गए पूर्वानुमान और प्रयोगों द्वारा किए गए अवलोकनों के बीच अंतर बहुत अधिक हो जाता है, तो लोग सोचने लगते हैं कि नए प्रयोगों या प्रयोगों से प्राप्त परिणामों के मद्दे नज़र सिद्धांत में संशोधन का वक़्त आ गया है। लिहाज़ा, वैज्ञानिक व्याख्या सीखते वक़्त हमें उसकी प्रयुक्ति के दायरे और उसकी उपयोगिता की सीमाओं दोनों को समझना होगा। अलबत्ता, यथार्थ की वास्तविक संरचना सदा एक रहस्य बनी रहेगी। हमारे पास सिर्फ़ यथार्थ के सन्निकटन हैं, यथार्थ के सिद्धांत हैं। और जिस तरह से स्वयं यथार्थ एक रहस्य बना रहता है उसी तरह यथार्थ के विवरण के रूप में गणितीय मॉडल्स की सफलता भी एक रहस्य बनी रहती है, जैसी कि सबसे पहले आइंस्टाइन ने टिप्पणी की थी।

निर्माणवादी कार्यक्रम का असर भारतीय शिक्षा पर भी हुआ था और मुझे याद है कि 1967 में ऑल इंडिया साइंस टीचर्स एसोसिएशन ने एक प्रोजेक्ट उठाया था जिसे वास्तव में एनसीईआरटी का वित्तीय सहयोग मिला था। यह तीन साल चला था और मुख्यतः पब्लिक स्कूलों - दून, नाभा, अजमेर - में चला था। प्रोजेक्ट में नफील्ड कार्यक्रम को भारतीय परिस्थिति व हालात के अनुरूप ढालने की कोशिश की गई थी। बाद में यह एक कार्यक्रम की प्रेरणा बना जो बंबई के नगरपालिका स्कूलों में तीन साल चला और फिर 1970 के दशक के शुरू में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की प्रेरणा बना, वह भी शुरुआती अवस्था में नफील्ड कार्यक्रम से काफ़ी प्रभावित रहा। जिन तीन प्रोजेक्ट का मैंने ज़िक्र किया है, उनमें से पहला कार्यक्रम तो दो साल में ही बंद हो गया था हालांकि उसकी सामग्री तीन-वर्षीय कार्यक्रम के लिए बनाई गई थी। इसके बंद होने का एक कारण तो यह था कि एनसीईआरटी ने फंडिंग रोकने की होशियारी दिखाई और दूसरा कारण यह था कि जिन पब्लिक स्कूलों में यह कार्यक्रम चलाया जा रहा था, वे तो वैसे भी ख़ास उत्सुक नहीं थे। उनके पास नफील्ड कार्यक्रम के लिए बनाई गई सारी सामग्री व उपकरण वग़ैरह उपलब्ध थे और इस तरह के भारतीयकरण में उनकी खास रुचि नहीं थी। बंबई स्कूलों का कार्यक्रम भी करीब तीन साल चला था और वहां इसके अवसान का कारण थोड़ा अलग था।

शिक्षकों ने इस निर्माणवादी ढंग से दो साल तक खुशी-खुशी पढ़ाया और फिर तीसरे साल के शुरू में कक्षा 8 के शिक्षकों को बताया गया कि उनके बच्चों को नगर निगम बोर्ड की रूढ़िगत परीक्षा में बैठना होगा। ज़ाहिर है, शिक्षकों के बीच हड़कंप मच गया और उन्होंने कहा, "हमारी नौकरी का सवाल है, इसलिए नमस्कार। पढ़ाने के लिए ये सब चीज़ें तो बहुत बढ़िया हैं मगर अब मुझे सामान्य पाठ्यक्रम के हिसाब से पढ़ाना होगा।" लिहाज़ा वे अपने ढर्रे पर लौट गए और कार्यक्रम धराशायी हो गया। होशंगाबाद कार्यक्रम, जो 1972 में शुरू हुआ था, कहीं अधिक लंबे समय तक चला मगर इसे भी 2 साल पहले एक प्रशासनिक फतवे द्वारा बंद कर दिया गया। तमाम विरोध और कार्यक्रम की उपयोगिता या कार्यक्षमता को लेकर तमाम दलीलों का सरकार के निर्णय पर रत्तीभर असर नहीं हुआ। तो संक्षेप में यह था वह ऐतिहासिक संदर्भ जिसके तहत मैं अपनी बात रखूंगा। मैं करूंगा यह कि आपको इस कार्यक्रम को लेकर हुई कुछ प्रतिक्रियाएं बताऊंगा और यह बताऊंगा कि लोगों ने जब इस तरीक़े से भौतिकी पढ़ाने की कोशिश की तो किस ढंग के नए विकास सामने आए।

हुआ यह कि समय के साथ पश्चिम में इस तरह के कार्यक्रम पर आधारित पाठ्यक्रम की गहरी छानबीन होने लगी और आलोचना होने लगी। इसका कारण था कि यह समझ में आने लगा था कि साठ के दशक में रचे गए पाठ्यक्रम विज्ञान शिक्षा का स्तर, ख़ास तौर से सीखने की उपलब्धियों के संदर्भ में, सुधारने में अपेक्षा से कम सफल रहे थे। लोगों ने खोजबीन शुरू की कि ऐसा क्यों है। और इसके बाद किए गए अध्ययनों से पता चला कि विज्ञान पाठ्यक्रम के कई हिस्सों में छात्रों ने जो सीखा है वह वैज्ञानिकों द्वारा सही मानी जानेवाली अवधारणाओं से काफ़ी अलग था। मतलब औपचारिक शिक्षा के बाद भी छात्र लगातार ग़लत धारणाओं से चिपके हुए थे, जिन्हें

आजकल यथार्थ की वैकल्पिक संकल्पनाएं कहा जाता है और जो उन अवधारणाओं से काफ़ी अलग होती हैं जिन्हें वैज्ञानिक मानते हैं और पाठ्यक्रम निर्माताओं की अपेक्षा थी कि शिक्षा के बाद छात्र भी मानेंगे। अचरज की बात यह थी कि ये इक्का-दुक्का छात्रों की ग़लत संकल्पनाएं नहीं थीं, ये ऐसी ग़लत संकल्पनाएं थीं जो लगभग सार्वभौमिक प्रकृति की थीं और काफी दृढ़ता से जड़ें जमाए लगती थीं। ये सहजबोध पर आधारित हैं और इन्हें बदलना बहुत मुश्किल होता है। इस समय हमें भी इस परिघटना को समझने में रुचि पैदा हुई और हमने स्कूली छात्रों, स्नातक छात्रों, स्नातकोत्तर छात्रों और चोरी-छिपे हमारे अपने विभाग के कुछ फैकल्टी सदस्यों का भी एक अध्ययन किया। यह हैरत की बात थी कि ये ग़लत संकल्पनाएं कितनी व्यापक और कितनी आम हैं।

यहां मैं आपको दो उदाहरण देना चाहूंगा कि ग़लत संकल्पनाओं से मतलब क्या है ताकि आप देख सकें कि मैं क्या कहने की कोशिश कर रहा हूं। अचरज की बात सिर्फ़ यह नहीं थी कि ये ग़लत संकल्पनाएं औपचारिक शिक्षा के बावजूद बनी रहती हैं। अचरज की बात यह भी थी कि ये सहजबोध आधारित थीं और चूंकि ये सहजबोध आधारित थीं इसलिए इन्हें उखाड़ना बहुत मुश्किल था। कई बार यह देखा गया कि औपचारिक शिक्षा के बाद छात्र कभी-कभी सही सिद्धांत अर्जित तो कर लेते हैं, मगर अपने दिमाग़ में सहजबोध आधारित नज़रिया और सही सिद्धांत दोनों रखते हैं, और सवालों के जो जवाब वे देते हैं वे सहजबोध या औपचारिक सिद्धांत में से किसी पर भी आधारित हो सकते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि सवाल किस ढंग से पूछा गया है। अगले पांच मिनट मैं आपसे इसी के बारे में बात करूंगा।

निम्न समस्या पर ग़ौर कीजिए : एक अंतरिक्ष यान एकरूप वेग से सुदूर अंतरिक्ष में आगे बढ़ रहा है। समय $t = 0$ पर यह एक रॉकेट छोड़ता है जिसकी दिशा इसकी गति के लंबवत् है। इसके परिणामस्वरूप यान में एक एकरूप त्वरण पैदा हो जाता है।

छात्रों से यान की ट्रेजेक्टरी (प्रक्षेप पथ) बताने को कहा गया। मान लीजिए यह सरल रेखा दर्शाती है कि यान एक एकरूप वेग से चल रहा है और उसके इंजिन लंबवत् दिशा में हैं। समय $t = 0$ पर जब यान इस बिंदु पर पहुंचता है, तो वह अपना पहला इंजिन चालू करता है और इसके कारण उसमें नीचे की दिशा में एक एकरूप त्वरण पैदा होता है। और यदि आप छात्रों से पूछें कि "क्या अब तुम इस यान का मार्ग दर्शा सकते हो?", तो वे हमेशा कहते हैं कि यह एक स्थिर त्वरण 'a' से इस दिशा में जाएगा और इसी दिशा में आगे बढ़ता रहेगा (चित्र 1)। अब एक मायने में यह काफ़ी हद तक 'रोड-रनर' प्रभाव की तरह है। जिन लोगों ने बचपन में कॉमिक्स पढ़े हैं या कार्टून फ़िल्में देखी हैं, उन्हें याद होगा कि उनमें एक रोड रनर होता है जो किसी चीज़ का पीछा कर रहा है या किसी से बचकर भाग रहा है और वह किसी कगार पर पहुंच जाता है। मान लीजिए कि यह है कगार और मान लीजिए कि यह रोड रनर है और रोड रनर झपट्टे से आता है और कगार के आगे निकल जाता है और फिर थोड़े समय बाद एक पत्थर की तरह गिरने लगता है (चित्र 2)। यह काफी प्रचलित मत है जो गति के सम्बंध में सहज बुद्धि का नज़रिया भी है।

दूसरी ओर, मान लीजिए कि यही समस्या ऐसे छात्रों के सामने रखी जाती है जिन्होंने मेकेनिक्स की शिक्षा ग्रहण की है मगर मैं उन्हें यह नहीं कहता कि 'कक्षा (ऑर्बिट) का चित्र बनाओ'। इसकी बजाय यदि मैं उनसे यह कहूं कि "गति की समीकरणें लिखो और इस रॉकेट की ट्रेजेक्टरी पता करो", तो जिन छात्रों ने रोड रनर चित्रवाला उत्तर दिया था, उनमें से कम से कम होशियार छात्र कहेंगे, "क्ष-अक्ष इस दिशा में बनाएंगे और य-अक्ष इस दिशा में बनाएंगे।" समय $t = 0$ के बाद क्ष अक्ष की दिशा में तय की गई दूरी होगी $x = vt$, जहां v क्ष दिशा में यान का वेग है। ज़ाहिर है कि य दिशा में गति का कोई घटक नहीं है, तो यह एक विशुद्ध त्वरण का मामला है और य दिशा में तय की गई दूरी $y = (1/2)at^2$ होगी, जहां a त्वरण है। मैं इन दोनों समीकरणों को जोड़कर

प्राप्त कर सकता

हूं। गणित या भौतिकी का हर छात्र जानता है कि यह परवलय (पैराबोला) का समीकरण है। छात्र यह वक्र रेखा खींचकर आपको बता देंगे कि मार्ग परवलय होगा (चित्र 3)। जो आश्चर्यजनक चीज़ में आपको बताना चाहता हूं वह यह है कि या तो ये छात्र आपको यह दूसरावाला उत्तर देंगे जो सही उत्तर है, वैज्ञानिक रूप से मान्य उत्तर है, या पहलेवाला उत्तर देंगे और उनका उत्तर इस बात पर निर्भर होगा कि आप प्रश्न किस ढंग से रखते हैं। तो ज़ाहिर है कि मामला यह नहीं है कि छात्र समझे नहीं हैं। वह एक अलग समस्या है। जो छात्र समझ चुके हैं, उनमें क्यों यह द्वन्द्व है? माजरा क्या है? प्रश्न किस तरह से पूछा गया, इसके आधार पर आपको यहवाला उत्तर मिलता है या वहवाला उत्तर मिलता है और यह बात विज्ञान शिक्षा के निर्माणवादी सिद्धांत की छानबीन के दौरान सामने आई।

बस एक उदाहरण और दूंगा और उसके बाद ढर्रे पर लौट आऊंगा। यह भी एक ऐसी चीज़ है जिसे कई लोगों ने आज़माया है। मैं एक गेंद लेकर उसे हवा में उछालता हूं। शिक्षण के बाद छात्रों को पता होता है कि इसका मार्ग परवलय होता है तो मैं एक परवलय बना देता हूं और इस पर तीन-तीन अलग-अलग स्थितियों में गेंद बना देता हूं (चित्र 4)। और मैं सवाल यह पूछता हूं: "गेंद इस दिशा में चल रही है। आप बताइए कि इन तीनों स्थितियों में गेंद पर कौन-कौन-से बल लग रहे हैं और उन बलों की दिशा क्या है?" छात्र हर बार यही कहते हैं, "गेंद इस दिशा में चल रही है, तो बल भी उसी दिशा में होना चाहिए। परावलय के शीर्ष पर गेंद लगभग गतिहीन है, तो वहां उस पर कोई बल नहीं लग रहा है। तीसरी स्थिति में बल उसी दिशा में लग रहा है जिधर गेंद जा रही है।" अब मैं पूछता हूं, "ज़रा देखो कि वह क्या चीज़ है जो बदली है? मतलब इस स्थिति (जब गेंद ऊपर जा रही है) से इस स्थिति में (जब गेंद नीचे जा रही है), उस पर कौन-सा बल लग रहा है?" और वे स्वीकार करते हैं कि गेंद पर जो एकमात्र बल लग रहा है, वह गुरुत्वाकर्षण का बल है और गुरुत्वाकर्षण का बल हमेशा नीचे की ओर लगता है और यदि आप प्रश्न को इस रूप में पूछें तो वे सदा यही उत्तर देंगे। मगर यदि आप ऐसा दर्शाएं कि आप एक चलताऊ सवाल पूछ रहे हैं, तो आपको यह जबाव मिलेगा कि बल की दिशा वही होनी चाहिए जो गति की दिशा है।

इस द्वन्द्व का कारण यह है कि छात्रों में भौतिकी की एक सहज समझ है जो औपचारिक शिक्षा से नहीं बनी

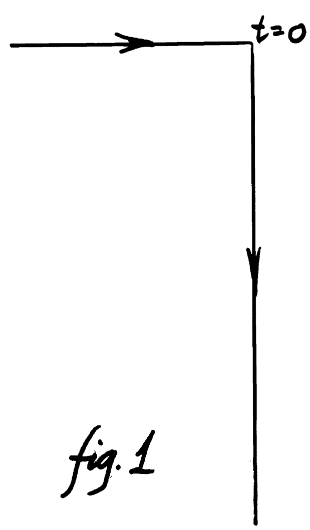
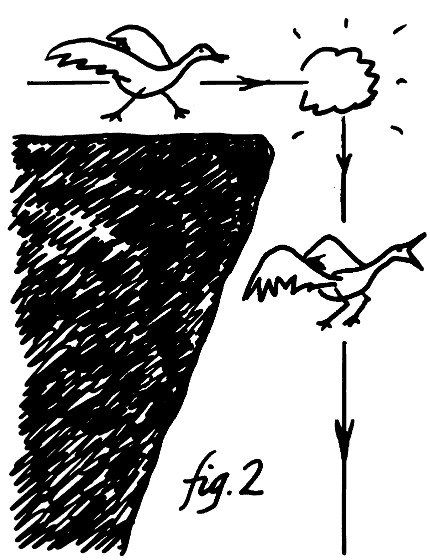
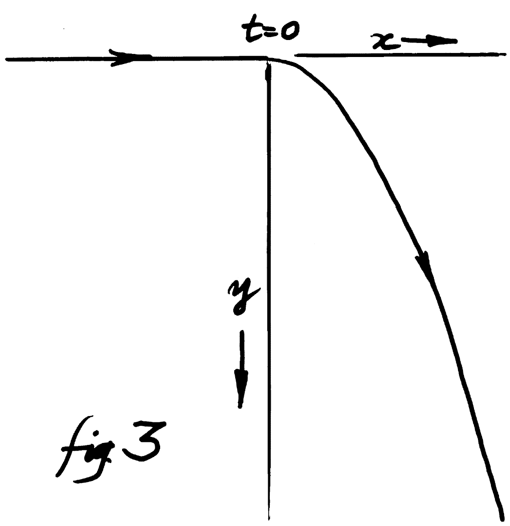
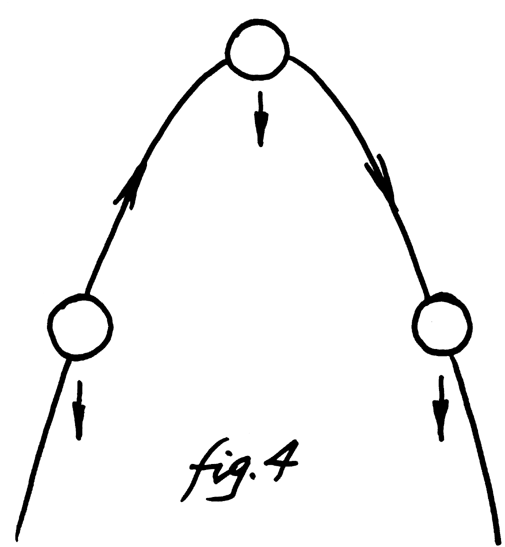


fig.1


fig.2

है बल्कि स्कूल आने से पहले अपने जीवन में बाहरी दुनिया का अर्थ समझने के प्रयास में बनी है। और मेरे ख़्याल में इस बात को बहुत सावधानीपूर्वक स्वीकार करने की ज़रूरत है कि छात्र कक्षा में खाली दिमाग़ लेकर नहीं आते। डील-डौल में छोटे ही सही मगर वे इन्सान हैं जिन्होंने अपने आसपास की भौतिक परिघटनाओं का अर्थ समझने के प्रयास में अपनी एक विश्व दृष्टि विकसित करने का प्रयास किया है। कई बार यह देखना दिलचस्प होता है कि ये मत भौतिकी में अवधारणाओं के ऐतिहासिक विकास को प्रतिबिंबित करते हैं। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि ये दोनों ही उत्तर गति के बारे में अरस्तूवादी विचारों से मेल खाते हैं जिसमें वस्तु तब तक गतिहीन रहती है जब तक उस पर कोई बल न लगाया जाए। और बल की दिशा का पता गति की दिशा से चलता है। अर्थात् यदि कोई चीज़ गति में है तो इससे पता चलता है कि उस पर गति की दिशा में बल लग रहा है। मैं इस बात पर फिर लौटूंगा। मगर यह एक ऐसी चीज़ है जिसे बच्चों ने सहज बुद्धि से निर्मित किया है और मेरे ख़्याल में अरस्तू ने भी इसी कारण से यह सुझाया होगा। यदि आप किसी गेंद को फ़र्श पर लुढ़काने की कोशिश करें, तो आपको उसे पहले एक धक्का देना होगा और धक्का सिद्धांत कहता है कि गेंद तब तक लुढ़कती रहती है जब तक धक्का उस पर क्रिया करता रहता है। अलबत्ता यह धक्का गेंद को लुढ़काने में ख़र्च होता रहता है और एक समय ऐसा आता है जब धक्का शून्य हो जाता है और यह वह बिंदु होता है जब गेंद रुक जाती है। मैं यह चर्चा बाद में करूंगा कि इस विचार में क्या ग़लती है और इस परिघटना की सही व्याख्या क्या है। मगर मैं और आप देखते यही हैं, बच्चे भी यही देखते हैं कि गेंद को लुढ़काने के लिए कुछ बल लगाना पड़ता है और कुछ समय बाद गेंद रुक जाती है। लिहाज़ा गति बल की क्रिया की दिशा की सूचक है। इसलिए यदि यहां गेंद इस दिशा में चल रही है और यहां गेंद गतिहीन है तो यहां उस पर इस दिशा में बल लग रहा होगा और जब वह गतिहीन है तब उस पर कोई बल नहीं लग रहा है और इसी प्रकार से जब वह नीचे की ओर गति कर रही है तो बल नीचे की दिशा में होना चाहिए। इसी प्रकार से दूसरे उदाहरण में, रोड रनर पर शुरू में एक निश्चित धक्का लगा था जो ख़र्च होता रहता है, और जब वह ख़र्च हो जाता है, तो गुरुत्व बल हावी हो जाता है और गति सीधे नीचे की ओर होती है।







पिछले तीस वर्ष इस क्षेत्र में काफ़ी शोध के गवाह रहे हैं। और अब मैं एक ट्रांसपरेंसी दिखा रहा हूं, उम्मीद है कि आप इसे पढ़ पाएंगे। वैसे, मैं इसे पढ़कर सुना भी दूंगा। यहां सात कथन दिए गए हैं, ये सही हो सकते हैं या ग़लत हो सकते हैं। मैं इस वक़्त आपको पूर्वाग्रह से ग्रस्त करना नहीं चाहता। मैं करूंगा यह कि एक-एक करके इन कथनों को पढूंगा और फिर मतदान करवाऊंगा कि आपमें से कितने लोग इन्हें सही मानते हैं। उसके बाद हम चर्चा करेंगे। कथन ये हैं:

1. पौधों का डील-डौल जड़ों के ज़रिए मिट्टी से लिए गए भोजन से बनता है।
2. दहन की प्रक्रिया में पदार्थ नष्ट होता है।
3. सूरज और तारे पूर्व में उदय होते हैं।
4. गर्मी का मौसम तब होता है जब धरती सूरज के निकटतम होती है।
5. बल्ब जलाने में विद्युत धारा ख़र्च हो जाती है।
6. सरल रेखा में एकरूप गति को बनाए रखने के लिए बल लगना ज़रूरी है।
7. भारी चीज़ें हल्की चीज़ों की अपेक्षा तेज़ी से गिरती हैं।

ये सात कथन हैं और अब मैं आपको

दो मिनट दूंगा कि आप सोचकर बताएं इनमें से कितने कथन आपको सही लगते हैं और कितने ग़लत लगते हैं। अब मैं मतदान करवाऊंगा।

मतदान के बाद मुझे पता चलता है कि किसी को भी सातों कथन सही नहीं लगते। सच्चाई यह है कि इनमें से एक भी कथन सही नहीं है।

चलिए तीसरे कथन से शुरू करते हैं, "सूरज और तारे पूर्व में उदय होते हैं"। यह तो साफ़ तौर पर सही नहीं है। यह समझने के लिए कि यह सही नहीं है, आपको यह देखना होगा कि सूरज कहां से उदय होता है और यह ध्यान देना होगा कि इसमें पूरे 45 डिग्री का अंतर आता है, एक वर्ष की अवधि में यह किसी एक कटिबंध पर ऐन सिर के ऊपर होता है फिर दूसरे कटिबंध तक जाता है। इसके अलावा ध्रुव तारा कभी उगता-डूबता नहीं है। जब सूर्यास्त के बाद रोशनी कम होती है तो यह दिखने लगता है, और सूर्योदय के बाद रोशनी बढ़ जाने पर यह गुम हो जाता है, ध्रुव तारा अपनी जगह स्थिर रहता है। फिर उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर सूरज छः महीनों तक उगता नहीं और छः महीनों तक डूबता नहीं। ज़ाहिर है, यह कथन सही नहीं है।

"गर्मी का मौसम तब होता है जब धरती सूरज के निकटतम होती है।" मेरे ख़्याल में जो लोग इस कथन को सही मान रहे हैं वे इस आधार पर ऐसा सोच रहे हैं कि आप आग के जितने नज़दीक होते हैं, उतना ही गर्म महसूस होता है। इसलिए यह सोचना स्वाभाविक लगता है कि गर्मियां तब होती हैं जब धरती सूरज के निकटतम होती है। मगर यदि आप वास्तव में इसके बारे में सोचें, मेरा मतलब है कि आपके ऐसा कहने का मतलब यह होगा कि सूरज के इर्द-गिर्द पृथ्वी के परिक्रमा पथ की दीर्घवृत्ताकार आकृति ही मौसम परिवर्तन का कारण है। हमें पढ़ाया गया है कि सूरज के आसपास पृथ्वी ही नहीं, सौर मंडल के हर ग्रह का परिक्रमा पथ (कक्षा) दीर्घवृत्ताकार होता है। पाठ्यपुस्तक में दिए गए रेखाचित्र आपको इस कक्षा का थोड़ा अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र देते हैं और यह कोई नहीं बताता कि हालांकि सूरज के इर्द-गिर्द पृथ्वी की कक्षा दीर्घवृत्त है मगर यह विचलन वृत्त से 1 प्रतिशत से भी कम है। दरअसल जब पृथ्वी सूरज के सबसे नज़दीक होती है, यानी जब वह अनुसूर्यबिंदु (पेरिहेलियन) पर होती है, तब वास्तव में उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े का मौसम होता है। यह कथन सही हो ही नहीं सकता क्योंकि यदि यह सही है, तो एक ही समय पर उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध दोनों जगह गर्मियां होंगी। और आप जानते ही हैं कि जब उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़ा होता है उस समय दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मियां होती हैं। इसलिए यह कथन सही नहीं हो सकता कि "गर्मियों में पृथ्वी सूरज के सबसे नज़दीक होती है"। मौसम की परिघटना की व्याख्या निकटता के आधार पर नहीं हो सकती। यह होता है सूरज की किरणों के सापेक्ष पृथ्वी की सतह के झुकाव में परिवर्तन के आधार पर। आपको बच्चों के साथ यह प्रयोग करना होगा कोई चीज़ या सतह लीजिए और उसे एक निश्चित समय के लिए सूरज से अलग-अलग झुकाव पर रखकर देखिए कि किस स्थिति में तापमान सबसे तेज़ी से बढ़ता है और यह साफ़ हो जाएगा कि दूरी में परिवर्तन की अपेक्षा झुकाव का असर इस बात पर बहुत अधिक पड़ता है कि वस्तु कितनी गर्म होती है।

"बल्ब जलाने में विद्युत धारा खर्च हो जाती है।" मुझे लगता है कि बच्चे यह धारणा ख़ास तौर से तब विकसित करते हैं जब वे बैटरी का इस्तेमाल करते हैं। टॉर्च जला-जलाकर बैटरी ख़र्च हो जाती है। उन्हें यही समझ में आता है मगर विद्युत धारा तो इलेक्ट्रॉनों का प्रवाह है, और इलेक्ट्रॉन कभी नष्ट नहीं होते। इसके कारण ही आवेश का संरक्षण होता है। तो यह साफ़ तौर पर सही नहीं है।

"सरल रेखा में एकरूप गति को बनाए रखने के लिए बल लगना ज़रूरी है।" इसकी बात मैं पहले ही कर चुका हूं। इस समस्या को गैलीलियो ने संबोधित किया था, वैसे इस बात पर विवाद है कि उन्होंने प्रयोग किया था या नहीं। मुझे लगता है कि उन्होंने प्रयोग किया होगा। उन्होंने किया यह कि - एक नत समतल लिया और उसके एक निश्चित बिंदु से गेंद को बार-बार लुढ़काया जिससे उन्हें पता चल गया कि प्रयोग के दौरान वे गेंद को एक-सी ऊर्जा दे रहे हैं। उन्होंने यह किया कि सबसे पहले एक खुरदरी सतह का उपयोग किया, फिर थोड़ी कम खुरदरी सतह ली और अंत में निहायत चिकनी सतह

ली, और उन्होंने देखा कि नत समतल से आगे बढ़ने के बाद गेंद उस सतह पर कितनी दूरी तय करती है, यह इस बात पर निर्भर है कि वह सतह कितनी खुरदरी है। तो फिर उन्होंने तर्क किया कि जैसे-जैसे सतह चिकनी होती जाती है, गेंद की गति पर लगनेवाला प्रतिरोध कम-कम होता जाता है और यह कल्पना करना मुश्किल नहीं है कि यदि सतह पूर्णतः चिकनी हो, तो गेंद को एक बार गति देने पर वह सदा के लिए गति में बनी रहेगी। इस प्रकार से वे जड़त्व के बारे में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचे। वस्तु की क़ुदरती अवस्था या तो विराम की होती है या एकरूप गति की होती है और गति की मौजूदगी आपको बल की मौजूदगी नहीं बताती, गति में परिवर्तन आपको बताता है कि वस्तु पर बल लग रहा है। यह बताने के लिए गैलीलियो की क्षमतावाला व्यक्ति इसलिए ज़रूरी था क्योंकि जब गेंद किसी सतह पर लुढ़क रही है और धीमी होती जा रही है, तब बहुत लोग यह नहीं पहचान पाएंगे कि एक गुप्त बल है जो गेंद पर लग रहा है और यह बल घर्षण है। चूंकि वे यह नहीं देख पाते कि गेंद पर एक गुप्त बल लग रहा है, उन्हें लगता है कि गेंद को गतिशील रखने के लिए आपको उसे धकेलते रहना पड़ता है। गेंद को एक धक्का देने और उस धक्के के ख़र्च हो जाने की अवधारणा यहां से उभरती है।

मुझे एक प्रयोग करने की इजाज़त दीजिए, मेरे पास कई प्रयोग तैयार हैं, मगर फ़िलहाल एक प्रयोग करते हैं। आप सब जानते हैं कि यह कथन सहजबोध के कितना नज़दीक हैः "भारी चीज़ें हल्की चीज़ों की अपेक्षा तेज़ी से गिरती हैं।" मैं आपको एक प्रयोग दिखाना चाहता हूं जिसकी बात गैलीलियो ने की है। मुझे पता नहीं, उन्होंने सचमुच यह प्रयोग किया था या नहीं। यह एक मशहूर प्रयोग है जिसमें दावा किया जाता है कि उन्होंने एक तोप के गोले और एक छोटे पत्थर को पीसा की मीनार से एक साथ गिराया था और दिखाया था कि दोनों साथ-साथ गिरते हैं। मेरे ख्याल में उन्होंने इसकी बात अपनी किताब टू साइन्सेज़ में की है। उन्होंने अरस्तू के इस मत की आलोचना की थी कि भारी वस्तुएं हल्की वस्तुओं से अधिक तेज़ी से गिरती हैं। दिलचस्प बात यह है कि वे न सिर्फ़ आपको एक क़िस्म का सैद्धांतिक तर्क देते हैं कि क्यों यह ग़लत होना चाहिए, मगर यदि आप इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें तो इसका आशय यह निकलता है, "मैं जो कह रहा हूं, वह भी पूरी तरह सही नहीं है, परम सत्य नहीं है, मगर अरस्तू के कथन में निहित त्रुटि की अपेक्षा मेरे कथन में निहित त्रुटि कहीं कम है। इसलिए मेरे स्थापना में शामिल छोटी सी ग़लती की वजह से आपको मेरे सिद्धांत को अरस्तू के सिद्धांत के समकक्ष रखने को प्रेरित नहीं होना चाहिए।" गैलीलियो भौतिक यथार्थ से निकटता की यह अवधारणा जोड़ रहे हैं। बेहतर विवरण वह है जो प्रायोगिक अवलोकन के अधिक निकट हो। यह ज़रूरी नहीं है कि यह सिद्धांत सही है या वह सिद्धांत सही है बल्कि सिद्धांत क्रमशः और बढ़ते क्रम में भौतिक यथार्थ के अधिक निकट पहुंचते हैं और इसी तरह भौतिक विज्ञान प्रगति करते हैं। तो मैं आपके लिए गैलीलियो का प्रयोग दोहराता हूं।

बच्चे क्यों न मानें कि हल्की चीज़ें भारी चीज़ों की अपेक्षा धीमे गिरती हैं। पहले मैं काग़ज़ का एक टुकड़ा लेता हूं, उसे एक हथेली पर सपाट रखता हूं, दूसरे हाथ से एक नोट बुक पकड़ता हूं और दोनों को गिरा देता हूं। अब मैं इस प्रयोग को दोहराता हूं मगर गिराते समय काग़ज़ को आड़ा रखने की बजाय खड़ा पकड़ता हूं। ज़ाहिर है कि इस काग़ज़ के गिरने की रफ़्तार इस पर निर्भर है कि मैं उसे कैसे छोड़ता हूं। यदि मैं इस प्रयोग को फिर से दोहराऊं मगर इस बार काग़ज़ के टुकड़े को मसलकर एक गेंद बना दूं तो आप देखेंगे कि नोट बुक के गिरने की गति में और काग़ज़ के टुकड़े के गिरने की गति में कोई ख़ास अंतर नहीं रह जाता।

अब मैं कह सकता हूं कि इस प्रदर्शन से स्पष्ट है कि काग़ज़ की आकृति की कुछ भूमिका ज़रूर है और यदि आप थोड़ा विश्लेषण करें तो समझ जाएंगे कि फ़र्क़ हवा के प्रतिरोध की वजह से पड़ रहा है।

प्रदर्शन को जारी रखते हुए, मैं काग़ज़ के टुकड़े को नोट बुक के नीचे रखकर दोनों को गिरा देता हूं। दोनों

स्पष्ट रूप से साथ-साथ गिरते हैं मगर शंकालु लोग कहेंगे कि इसमें तो एक चीज़ थी जो धीमी गिर रही थी और मैंने धीमी गिरनेवाली चीज़ को नीचे रख दिया तो ज़ाहिर है कि दोनों साथ-साथ गिरेंगी, और इससे कुछ साबित नहीं होता। तो अब मेरा पसंदीदा प्रयोग पेश है। काग़ज़ का टुकड़ा लीजिए, यह नोट बुक लीजिए, काग़ज़ के टुकड़े को नोट बुक के ऊपर रख दीजिए ताकि नोट बुक काग़ज़ को नीचे नहीं दबा रही हो। और जैसा कि आप देख सकते हैं, ये दोनों फिर भी साथ-साथ गिरते हैं। तो गैलीलियो की बात सही है। इस क़वायद का मुद्दा यह है कि ऐसे सरल प्रयोग किए जा सकते हैं जो छात्रों की ग़लत अवधारणाओं को सीधे संबोधित कर सकते हैं और उनके दिमाग़ से निकाल सकते हैं। चलिए पहले कथन की बात करके मैं अपनी बात समाप्त करता हूं, 'पौधों का डील-डौल जड़ों के ज़रिए मिट्टी से लिए गए भोजन से बनता है'। यहां ज़्यादा लोग ऐसे होंगे जो यह मानते होंगे कि कम से कम यह कथन तो ग़लत है।

इस बारे में रिचर्ड फाइनमैन क्या कहते हैं। फाइनमैन कहते हैं: "कि विज्ञान सीखने के बाद दुनिया इतनी अलग लगती है। मसलन, पेड़ मूलतः हवा से बने हैं।" उनके कहने का मतलब यह है कि पेड़ों की काया कार्बन से बनी है और कार्बन, कार्बन डाईऑक्साइड से आता है। "जब उन्हें जलाया जाता है तो वे वापिस हवा में चले जाते हैं, और लपटों के साथ जो गर्मी निकलती है वह तपते हुए सूरज की वह गर्मी है जिसे बांधकर हवा को पेड़ का रूप दिया गया था।" यह प्रकाश संश्लेषण की क्रिया है। "और राख में वह बचा हुआ भाग है जो हवा से नहीं आया था, मिट्टी से आया था।" इससे पता चलता है कि जलने में पदार्थ ख़र्च होता है या नहीं। फाइनमैन आगे कहते हैं, "ये सुंदर चीज़ें हैं, और विज्ञान की विषयवस्तु अद्भुत ढंग से इनसे भरी पड़ी है। ये प्रेरणास्पद हैं, और इनका उपयोग अन्य लोगों को प्रेरित करने के लिए किया जा सकता है।"

विद्या भवन सोसायटी द्वारा प्रकाशित **ज्ञान का निर्माण** से साभार। ''ज्ञान का निर्माण'' सेमीनार विद्या भवन में 15–16 अप्रैल 2004 को आयोजित किया गया था। **विजय एस. वर्मा,** दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं। स्कूली शिक्षा में सक्रिय भागीदारी।

